[2009] 9 एस. सी. आर 828

भारत संघ व अन्य

बनाम

बिशम्बर दास डोगरा

(सिविल अपील सं. 7087/2002)

26 मई, 2009

[डॉ. मुकुंदकम शर्मा और डॉ. बी. एस चौहान, न्यायाधिपतिगण]

सेवा कानून-सेवा से बर्खास्तगी-कर्मचारी-सी. आई. एस. एफ. में सुरक्षा गार्ड नेसेवा में छह साल पूरे नहीं किए लेकिन लाइन को पांच बार छोड़ गया-सेवा से बर्खास्त कर दिया अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा-निम्न न्यायालयों द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए अपास्त किया गया कि जांच रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की गई, कर्मचारी को आपतियां दर्ज करने का अवसर नहीं दिया गया और पिछले आचरण को ध्यान में रखा गया दण्ड अधिरोपित करते समय- यह न्यायहित में नहीं। अपराधी को जांच रिपोर्ट प्रस्तुत न करना कर्मचारी वास्तव में अनुशासनात्मक कार्यवाही को दूषित नहीं करेगा-कर्मचारी को यह स्थापित करना होगा कि वास्तविक प्रतिकूल

प्रभाव/पक्षपात पैदा हुआ। अनुशासनात्मक प्राधिकरण कर्मचारी को सज़ा देते हुए उसके पिछले आचरण को ध्यान में रख सकती हैं। तथ्यों पर, बार- बार दोहराए गये दुराचार/ अनुपस्थित पर कोई स्पष्टीकरण नहीं- कर्मचारी ने इसकी व्याख्या नहीं की जाँच प्रस्तुत न करने से उसके प्रति क्या पूर्वाग्रह/पक्षपात पैदा हुआ और न ही यह कि न्याय की विफलता थी- इस प्रकार, उच्च न्यायालय के आदेश को रद्द कर दिया गया और अनुशासनात्मक प्राधिकरण के निर्णय को बहाल किया गया।

इनमें जिन प्रश्नों पर विचार किया जाना था वह यह है कि क्या अपराधी कर्मचारी को सजा देने से पहले जांच रिपोर्ट उपलब्ध नहीं कराए जाने की स्थिति में वास्तविक पूर्वाग्रह स्थापित नहीं किया जाना चाहिए, और यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी सज़ा के प्रयोजन के लिए दोषी कर्मचारी के पिछले आचरण पर विचार करता है तो क्या सज़ा का आदेश दूषित हो जाएगा?

अपील को अनुमति देते हुए, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया -

1.1. तत्काल मामले में, संबंधित मुद्दा यह हैं कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के पालन में अपराधी कर्मचारी को अभिलिखित तथ्य के निष्कर्षों के विरुद्ध प्रतिनिधित्व जाँच अधिकारी द्वारा उसके खिलाफ और उसके लिए भी अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा प्रस्तावित दंड के लिए सुनवाई का अवसर नहीं मिला। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन हुआ हैं या नहीं

यह प्रत्येक मामले की तथ्य और परिस्थिति पर निर्भर करता हैं। इसलिए प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन हुआ हैं या नहीं यह प्रत्येक मामले के प्रासंगिक तथ्यों और परिस्थितियों के संदर्भ में देखना होगा [पैरा 9] [836-सी-ई]

1.2. एक आदेश की जांच करने की आवश्यकता है पूर्वाग्रह के सिद्धांत की कसौटी पर [पैरा 11] [837-ए-बी]

1.3. यदि जांच रिपोर्ट अपराधी कर्मचारी के लिए उपलब्ध नहीं करायी गई तो वास्तव में इसका मतलब यह नहीं होगा सभी कार्यवाही दूषित हो गई है क्योंकि यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है और अपराधी कर्मचारी को यह स्थापित करना होगा कि वास्तविक जाँच रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं करने से उसके प्रति पूर्वाग्रह पैदा हुआ है। [पैरा16] [839-एफ-जी]

अध्यक्ष, खनन परीक्षा बोर्ड और मुख्य निरीक्षक एवं अन्य बनाम रामजी ***ए आई आर 1977 एस. सी. 965;*** *डॉ. उमराव सिंह चौधरी बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य* ***(1994) 4 एस. सी. सी. 328;*** *सिंडिकेट बैंक और अन्य बनाम वेनकटेश गुरुराव कुराती* ***जे. टी. (2006) 2 एस. सी. 73;*** *प्रबंध निदेशक, ईसीआईएल वी. बी. करुणाकर* ***(1993) 4 एससीसी 727;*** *भारत संघ बनाम मोहम्मद. रमजान खान,* ***ए. आई. आर. 1991 एस. सी. 471;*** *हरियाणा वित्तीय निगम बनाम कैलाश चंद्र आहूजा* ***(2008)***

9 एस. सी. सी. 31; स्टेट बैंक ऑफ पटियाला बनाम एस. के. शर्मा (1996) 3 एससीसी 364; एस. के. सिंह बनाम सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया और अन्य (1996) 6 एस. सी. सी. 415; राज्य. यू. पी. बनाम. हरेंद्र अरोड़ा और अन्य ए. आई. आर. 2001 एससी 2315; अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय बनाम मंसूर अली खान (2000) 7 एससीसी 529; एम. सी मेहता बनाम भारत संघ और अन्य (1999) 6 एस. सी. सी. 237; एस.कपूर बनाम जगमोहन ए. आई. आर. 1981 एस. सी. 136, संदर्भित किये गये है।

2. यह वांछनीय है कि हो सकता हैं कि अपराधी कर्मचारी, अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा सूचित किया गया कि सजा देते समय उसके पिछले आचरण को ध्यान में रखा जाएगा। लेकिन कदाचार के मामले में कर्मचारी का निर्विवाद पिछला आचरण/सेवा रिकॉर्ड निर्णय में अगर आवश्यक हो तो वजन जोड़ने के लिए लागू किया जा सकता हैं। [पैरा 25] [842- ई-जी]

असम राज्य बनाम बिमल कुमार ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 1612; मैसूर राज्य बनाम मांचे गौड़ा ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 506; भारत समुद्री सेवा (पी) लिमिटेड बनाम उनके कर्मचारी (1963) 3 एससीआर 575; महानिदेशक, आर. पी. एफ. बनाम. च. साई बाबू (2003) 4 एससीसी 331; भारत फोर्ज कंपनी लिमिटेड बनाम उत्तम

मनोहर नाकाटे ***(2005) 2 एससीसी 489;*** *आंध्र प्रदेश सरकार और अन्य बनाम मोहम्मद ताहिर अली* ***(2007) 8 एस. सी. सी. 656*** *और कलर-केम लिमिटेड बनाम ए. एल. अलसपुरकर और अन्य ए. आई. आर.* ***1998 एस. सी. 948*** *पर भरोसा किया गया।*

3. आदतन अनुपस्थिति का अर्थ है अनुशासन का घोर उल्लंघन [पैरा 26] [842-जी]

बर्न एंड कंपनी लिमिटेड बनाम वामर्स ***ए. आई. आर. 1959 एस. सी. 529*** *और एल. एंड टी. कोमात्सु लिमिटेड बनाम एन. उदयकुमार,* ***(2008) 1 एस. सी. सी. 224,*** *पर भरोसा जताया।*

4.1. प्रत्यर्थी-कर्मचारी ने छह साल की सेवा पूरी नहीं की है और उसे कर्तव्य से अनुपस्थित रहने के लिए तीन बार सज़ा दी गई हैं। चौथे बार जब वह बिना छुट्टी के 10 दिनों तक अनुपस्थित रहे, तो उनके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई [पैरा 27] [843-ए-बी] 831

4.2. कर्मचारी को कारण दर्शाओ नोटिस जारी नहीं किया जा सका कि उसने फिर से लाइन छोड़ दी और 50 दिनों के बाद वापस आ गया। इसलिए अनुशासनात्मक कार्यवाही शीघ्रता से समाप्त नहीं की जा सकी। प्रतिवादी ने कारण दर्शाओ नोटिस का जवाब प्रस्तुत किया और अभिलेख पर सामग्री से पता चलता है कि इस दौरान जाँच के लंबित रहने के दौरान उसने फिर से दस दिनों के लिये लाइन को छोड़ दिया। रिकॉर्ड में

अनुपस्थिति का स्पष्टीकरण दिखाने के लिए कुछ भी नहीं है न्यायालय/न्यायाधिकरण को यह ध्यान रखना चाहिए कि जहाँ तक अनुसाशन का संबंध है, ऐसी अनुशासनहीनता असहनीय है। प्रतिवादी सी. आई. एस. एफ. में गार्ड था। किसी भी स्तर पर प्रतिवादी-कर्मचारी द्वारा यह समझाने का पर्यास नहीं किया गया कि जाँच की रिपोर्ट प्रस्तुत न करने से उसे क्या पूर्वाग्रह/पक्षपात हुआ है और न ही उन्होंने कभी कहा कि इस तरह से न्याय की विफलता हुई हो। इससे भी अधिक, प्रतिवादी-कर्मचारी ने किसी भी स्तर पर कभी इनकार नहीं किया था कि वह पहले भी अनुसाशनातमक कार्यवाही के शुरू करने से पहले भी तीन बार दंडित किया गया और तत्काल मामले में, कारण दर्शाओ नोटिस जारी करने के बाद भी दो बार लाइन छोड़ कर गया। प्रत्यर्थी द्वारा कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया जा सका कर्मचारी ने किन परिस्थितियों में छुट्टी के लिए आवेदन जमा करना भी उचित क्यूं नहीं समझा। बल्कि, प्रत्यर्थी ने सोचा कि उसे अपनी इच्छा पर लाइन को छोड़ने का अधिकार है। यह एक गंभीर प्रकर्ति का मामला था। अपीलीय प्राधिकरण द्वारा कर्मचारी को सही कारण दर्शाकर/ठोस कारण देने वाला मामले के तथ्यों को ध्यान में रखकर अपील को तय किया गया था। ऐसी तथ्य स्थिति में, न्यायालय द्वारा न्यायिक शक्तियों के सीमित प्रयोग में, किसी भी हस्तक्षेप की अवशायकता नहीं हैं। अतः, ऐसे तथ्यों की परिस्थिति में उच्च न्यायालय द्वारा अनुशासनिक

प्राधिकारी द्वारा पारित किया गये फैसले में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था। उच्च न्यायालय की खंड पीठ का आदेश और निर्णय और उच्च न्यायालय की एकल पीठ के निर्णय को दरकिनार कर, सांविधिक प्राधिकारी द्वारा दिये गये दंड के आदेश को पुनर्स्थापित किया गया । [पैरा 28 और 29][843-बी-एच;844-ए-बी]

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील संख्या. 7087/2002.

उच्च न्यायालय, कलकत्ता के एफ़एमएटी 1370/1992 में दिनांक 31.01.2002 के निर्णय और आदेश से।

एस.डब्ल्यू.ए. क़ादरी, सुनीता शर्मा, एस.अन. टेरडोल और सुषमा सूरी, अपीलाथीर्यों की ओर से।

दिनेश कुमार गर्ग और बी.एस.बिल्लोरिया, अप्रत्यार्थीयों की ओर से।

यह निर्णय माननीय न्यायाधिपति डॉ. श्री. बी.एस. चौहान द्वारा दिया गया -

1. यह अपील 1992 के एफएमएटी नंबर 1370 में कलकत्ता उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच के 31 जनवरी, 2002 के फैसले और आदेश के खिलाफ दायर की गई है, जिसके द्वारा इसने विद्वान एकल बेंच के 16 जुलाई, 1991 के फैसले और आदेश की पुष्टि की है। न्यायाधीश ने 1987 के सिविल आदेश संख्या 3885 में प्रतिवादी कर्मचारी को अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा दी गई निष्कासन की सजा के आदेश को रद्द कर दिया।

2. इस अपील को जन्म देने वाले तथ्य और परिस्थितियां यह हैं कि प्रतिवादी अगस्त, 1980 में केंद्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल (सीआईएसएफ) में सुरक्षा गार्ड के रूप में सेवा में शामिल हुआ। वह अनुमति या छुट्टी मांगे बिना ड्यूटी से अनुपस्थित रहा, इस प्रकार, 12 तारीख के आदेश के तहत अगस्त, 1984 को उन्हें इसके लिए निंदा प्रविष्टि से दडिंत किया गया। प्रतिवादी को 22 जुलाई, 1985 के आदेश द्वारा तीन दिनों के लिए ड्यूटी से अनुपस्थित रहने के लिए फिर से दंडित किया गया और दो साल के लिए एक वार्षिक वेतन वृद्धि रोक दी गई। प्रतिवादी ने 31 अगस्त, 1985 से 8 सितंबर, 1985 तक यानी छह दिनों के लिए स्वयं को फिर से ड्यूटी से अनुपस्थित कर दिया, जिसके लिए 5 सितंबर, 1985 के आदेश के तहत उसे तीन साल के लिए एक वार्षिक वेतन वृद्धि रोकने की सजा दी गई। प्रतिवादी ने फिर से 6.3.1986 से 16.3.1986 की अवधि यानी 10 दिनों के लिए लाइन छोड़ दी, जिसके लिए उसे 22/24.3.1986 को सीआईएसएफ नियमों के नियम 34 के तहत कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था। उक्त नोटिस उन्हें नहीं दिया जा सका क्योंकि प्रतिवादी ने 21.3.1986 से 10.5.1986 तक 50 दिनों की अवधि के लिए फिर से लाइन छोड़ दी और 11 मई, 1986 को सेवा में शामिल हो गए। इसलिए, उन्हें कारण बताओ नोटिस दिनांक 22/24.3.1986, दिनांक 15 मई 1986 को दिया जा सकता था। प्रतिवादी ने कारण बताओ नोटिस का जवाब प्रस्तुत किया। हालाँकि,

यह संतोषजनक नहीं पाए जाने पर उनके खिलाफ नियमित विभागीय जाँच शुरू की गई। जांच लंबित रहने के दौरान प्रतिवादी ने 6.6.1986 से 16.6.1986 तक 11 दिनों के लिए फिर से लाइन छोड़ दी। जांच अधिकारी ने जांच पूरी की और रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसे अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने स्वीकार कर लिया, जिन्होंने दिनांक 17.6.1986 के आदेश के तहत सेवा से हटाने की सजा दी। सजा आदेश पारित करते समय अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने प्रतिवादी के पिछले आचरण को भी ध्यान में रखा।

3. व्यथित होकर, प्रतिवादी ने वैधानिक अपील दायर की, जिसे अपीलीय प्राधिकारी ने दिनांक 19.10.1986 के आदेश के तहत यह कहते हुए खारिज कर दिया कि प्रतिवादी ने सेवा में छह साल पूरे नहीं किए हैं, लेकिन पांच बार लाइन छोड़ चुका है। इस प्रकार कोई भी उदार दृष्टिकोण स्वीकार्य नहीं था।

4. व्यथित होकर, प्रतिवादी-कर्मचारी ने वैधानिक प्राधिकारी के समक्ष पुनरीक्षण को प्राथमिकता दी। हालाँकि, उक्त पुनरीक्षण के लंबित रहने के दौरान, उन्होंने कलकत्ता उच्च न्यायालय के समक्ष 1987 की रिट याचिका संख्या 3885 दायर की। विद्वान एकल न्यायाधीश ने दिनांक 16.7.1991 के फैसले और आदेश के तहत रिट याचिका को स्वीकार कर लिया और सजा के आदेश को इस आधार पर रद्द कर दिया कि जांच रिपोर्ट की प्रति प्रस्तुत नहीं की गई थी और प्रतिवादी कर्मचारी को आपत्तियां दर्ज करने का अवसर

नहीं दिया गया था। वही। इससे भी अधिक, सज़ा देते समय उसके पिछले आचरण को ध्यान में नहीं रखा जा सकता था।

5. व्यथित होकर, वर्तमान अपीलकर्ताओं ने कलकत्ता उच्च न्यायालय के समक्ष 1992 का एफएमएटी नंबर 1370 दायर किया, जिसे डिवीजन बेंच ने 31 जनवरी, 2002 के निर्णय और आदेश द्वारा खारिज कर दिया। इसलिए, यह अपील दायर की।

6. अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वकील श्री एसडब्ल्यूए कादरी ने प्रस्तुत किया है कि प्रतिवादी कर्मचारी सेवा में छह साल से कम समय के भीतर पांच से अधिक बार बिना किसी कारण या छुट्टी के ड्यूटी से अनुपस्थित रहा। जाँच लंबित रहने के दौरान भी वह दो बार अनुपस्थित रहे; पहला 50 दिन के लिए और दूसरा 11 दिन के लिए। इस प्रकार, जांच शीघ्रता से संपन्न नहीं हो सकी। यह जरूरी नहीं है कि हर मामले में दोषी कर्मचारी को जांच रिपोर्ट की प्रति न देना हमेशा घातक हो। ऐसे कर्मचारी के लिए यह स्थापित करना आवश्यक है कि जांच रिपोर्ट की प्रति न देने से उसके साथ पक्षपात हुआ है। इससे भी अधिक, दोषी कर्मचारी बार-बार बिना किसी कारण के अनुपस्थित रहता था। सज़ा देते समय उसके पिछले आचरण को ध्यान में रखने पर कोई रोक नहीं हो सकती, क्योंकि यह केवल सज़ा देने के कारणों को मजबूत करता है। 1986 में सजा का आदेश पारित हुआ, करीब 23 साल की अवधि बीत चुकी है। यदि उच्च न्यायालय

का आदेश लागू किया जाता है, तो अनुशासित बल के एक सदस्य द्वारा बार-बार लाइन छोड़ने का पुरस्कार होगा। अतः अपील स्वीकार किये जाने योग्य है।

7. इसके विपरीत, प्रतिवादी कर्मचारी की ओर से उपस्थित विद्वान वकील श्री डीके गर्ग ने प्रस्तुत किया है कि चूंकि जांच करते समय प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ है, इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णयों और आदेशों में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। सजा देते समय प्रतिवादी कर्मचारी के पिछले आचरण को ध्यान में नहीं रखा जा सकता क्योंकि यह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है। अतः अपील खारिज किये जाने योग्य है।

8. हमने पक्षकारों के विद्वान वकील द्वारा की गई प्रतिद्वंद्वी दलील पर विचार किया है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है। पक्षों के विद्वान वकील द्वारा की गई दलील के मद्देनजर, हमारे विचार के लिए केवल दो प्रश्न उठते हैं:

(1) क्या अपराधी कर्मचारी को सजा देने से पहले जांच रिपोर्ट उपलब्ध नहीं कराए जाने की स्थिति में वास्तविक पूर्वाग्रह स्थापित नहीं किया जाना चाहिए?

(2) यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी सज़ा के प्रयोजन के लिए दोषी कर्मचारी के पिछले आचरण पर विचार करता है तो क्या सज़ा का आदेश दूषित हो जाएगा?

9. वास्तव में ये दोनों मुद्दे प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के पालन से संबंधित हैं क्योंकि दोषी कर्मचारी को जांच अधिकारी द्वारा उसके खिलाफ दर्ज किए गए तथ्य के निष्कर्षों के खिलाफ प्रतिनिधित्व करने और अनुशासनात्मक प्राधिकारी की प्रस्तावित सजा के लिए भी प्रतिनिधित्व करने का अवसर नहीं मिल सकता है। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को एक स्ट्रेट-जैकेट फॉर्मूलेशन में नहीं रखा जा सकता है और इसका पालन प्रत्येक मामले की तथ्यात्मक स्थिति पर निर्भर करेगा। इसलिए, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुप्रयोग को किसी विशेष मामले के प्रासंगिक तथ्यों और परिस्थितियों के संदर्भ में समझा जाना चाहिए।

10. *अध्यक्ष खनन परीक्षा बोर्ड और मुख्य खान निरीक्षक एवं अन्य बनाम रामजी, एआईआर 1977 एससी 965,* उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि *प्राकृतिक न्याय कोई बेलगाम घोड़ा नहीं है, कोई गुप्त बारूदी सुरंग नहीं है, न ही कोई न्यायिक इलाज है।* यदि निर्णय-निर्माता द्वारा प्रत्येक स्थिति के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर ऐसी आवश्यक प्रक्रियात्मक औचित्य के रूप, विशेषताओं और बुनियादी सिद्धांतों के विरुद्ध आगे बढ़ने वाले व्यक्ति के प्रति निष्पक्षता दिखाई जाती है, तो प्राकृतिक न्याय के

उल्लंघन की शिकायत नहीं की जा सकती है। *डॉ. उमराव सिंह चौधरी बनाम मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य में।* (1994) 4 एससीसी 328, इस न्यायालय ने माना कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत कानून का स्थान नहीं लेते, बल्कि कानून के पूरक हैं। *सिंडिकेट बैंक और अन्य बनाम वेंकटेश गुरुराव कुराती जेटी* (2006) 2 एससी 73, यह आयोजित किया गया था:

> "प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के आरोप को बनाए रखने के लिए, किसी को यह स्थापित करना होगा कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन न करने के कारण उसके प्रति पूर्वाग्रह उत्पन्न हुआ है।"

11. यह स्थापित कानूनी स्थिति है कि किसी आदेश को पूर्वाग्रह के सिद्धांत की कसौटी पर परखा जाना आवश्यक है। *प्रबंध निदेशक, ईसीआईएल बनाम बी. करुणाकर* (1993) 4 एससीसी 727 मामले में इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने इस मुद्दे पर विस्तार से विचार किया और *भारत संघ बनाम मोहम्मद रमज़ान खान* एआईआर 1991 एससी 471, में अपने पहले के फैसले पर विचार करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि जांच रिपोर्ट की प्रति प्रस्तुत करना और अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा उस पर कर्मचारी के जवाब पर विचार करना जांच का एक अभिन्न अंग है। दूसरा चरण इस प्रकार की गई जांच के बाद होता है और इसमें प्रस्तावित दंड के खिलाफ कारण बताने के लिए नोटिस जारी करना और नोटिस के

जवाब पर विचार करना और दंड पर निर्णय लेना शामिल है। इस प्रकार, जांच रिपोर्ट में निष्कर्षों के खिलाफ प्रतिनिधित्व करने का अवसर प्राप्त करना कर्मचारी का अधिकार है। हालाँकि, न्यायालय ने आगे कहा कि उचित अवसर का सिद्धांत और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत कानून के शासन को बनाए रखने और व्यक्ति को उसके उचित अधिकारों की पुष्टि करने में सहायता करने के लिए विकसित किए गए हैं। न्यायालय ने आगे इस प्रकार कहा:

> "वे कोई मंत्र नहीं हैं जिन्हें लागू किया जाए और न ही सभी और विविध अवसरों पर किए जाने वाले अनुष्ठान। क्या वास्तव में, रिपोर्ट से इनकार करने के कारण कर्मचारी के साथ पक्षपात हुआ है या नहीं, इस पर तथ्यों पर विचार किया जाना चाहिए और प्रत्येक मामले की परिस्थितियां। इसलिए, जहां, रिपोर्ट प्रस्तुत करने के बाद भी, कोई अलग परिणाम नहीं हुआ होगा, कर्मचारी को ड्यूटी पर फिर से शुरू करने और सभी परिणामी लाभ प्राप्त करने की अनुमति देना न्याय का उल्लंघन होगा। यह न्याय का उल्लंघन होगा। बेईमानों और दोषियों को पुरस्कृत करना और इस प्रकार न्याय की अवधारणा को अतार्किक और अपमानजनक सीमाओं तक खींचना। यह "प्राकृतिक न्याय का अप्राकृतिक

विस्तार" है जो अपने आप में न्याय के विपरीत है। यदि न्यायालय/न्यायाधिकरण को लगता है कि रिपोर्ट प्रस्तुत करने से मामले के परिणाम में कोई फर्क पड़ेगा, तो उसे सजा के आदेश को रद्द कर देना चाहिए।"

12. *हरियाणा वित्तीय निगम बनाम कैलाश चंद्र आहूजा* (2008) 9 एससीसी 31 में, इस न्यायालय ने बी करुणाकर मामले (सुप्रा) में निर्धारित कानून को लागू किया और निम्नानुसार देखा:

"यह भी स्पष्ट है कि जांच अधिकारी की रिपोर्ट न देना नैसर्गिक न्याय का उल्लंघन है। लेकिन यह भी उतना ही स्पष्ट है कि दोषी कर्मचारी को जांच अधिकारी की रिपोर्ट न देने पर वास्तव में कार्यवाही नहीं होगी अशक्त और शून्य घोषित किया जा रहा है और सजा का आदेश अप्रभावी और अप्रभावी है। यह दोषी कर्मचारी पर निर्भर है कि वह दलील दे और साबित करे कि ऐसी रिपोर्ट की आपूर्ति न करने से पूर्वाग्रह पैदा हुआ और परिणामस्वरूप न्याय में बाधा उत्पन्न हुई। यदि वह अदालत को संतुष्ट करने में असमर्थ है उस बिंदु पर, सज़ा के आदेश को स्वचालित रूप से रद्द नहीं किया जा सकता है।"

13. *स्टेट बैंक ऑफ पटियाला बनाम एसके शर्मा* (1996) 3 एससीसी 364 में, इस न्यायालय ने पूर्वाग्रह के सिद्धांत के आवेदन पर जोर दिया और कहा कि जब तक यह स्थापित नहीं हो जाता कि दोषी कर्मचारी को जांच रिपोर्ट की प्रति न देना उसके प्रति पूर्वाग्रह उत्पन्न होने पर, न्यायालय सज़ा के आदेश में इस कारण से हस्तक्षेप नहीं करेगा कि ऐसी स्थिति में आदेश को रद्द करना न्याय के हित में नहीं होगा बल्कि यह उसे अस्वीकार करने के समान हो सकता है। यह न्यायालय निम्नानुसार आयोजित किया गया: -

> "न्याय का अर्थ दोनों पक्षों के बीच न्याय है। न्याय के हित समान रूप से यह मांग करते हैं कि दोषियों को दंडित किया जाना चाहिए और तकनीकी और अनियमितताएं जो न्याय की विफलता का कारण नहीं बनती हैं, उन्हें न्याय के लक्ष्यों को पराजित करने की अनुमति नहीं है। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत हैं लेकिन इसका मतलब न्याय के लक्ष्य को प्राप्त करना है। उन्हें बिल्कुल विपरीत लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए विकृत नहीं किया जा सकता है। यह एक प्रति-उत्पादक अभ्यास होगा।"

14. इसी तरह का दृष्टिकोण *एसके सिंह बनाम सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया और अन्य* (1996) 6 एससीसी 415, यूपी राज्य बनाम

हरेंद्र अरोड़ा एवं अन्य, एआईआर 2001 एससी 2315 में दोहराया गया था ।

15. *अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय बनाम मंसूर अली खान,* (2000) 7 एससीसी 529 में, इस न्यायालय ने *एमसी मेहता बनाम भारत संघ और अन्य* (1999) 6 एससीसी 237 के फैसले पर विचार किया। जिसमें यह माना गया है कि प्राकृतिक न्याय के उल्लंघन में पारित आदेश को रिट क्षेत्राधिकार के प्रयोग में रद्द करने की आवश्यकता नहीं है जब तक कि यह नहीं दिखाया जाता है कि गैर-पालन से संबंधित व्यक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। आदेश को रद्द करने से कोई अन्य आदेश पुनर्जीवित हो सकता है जो स्वयं अवैध या अनुचित है। इस न्यायालय ने *एसएल कपूर बनाम जगमोहन* एआईआर 1981 एससी 136 के फैसले पर भी विचार किया, जिसमें यह माना गया है कि एक अजीब परिस्थिति में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन केवल एक खाली औपचारिकता हो सकता है जैसे कि स्वीकार किए गए या निर्विवाद तथ्य पर कोई अन्य निष्कर्ष संभव नहीं हो सकता है। ऐसी तथ्य-स्थिति में, प्राकृतिक न्याय के उल्लंघन में पारित आदेश को रद्द करने की आवश्यकता नहीं है। न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन न करने की शिकायत करने वाले व्यक्ति को इस बात से संतुष्ट होना चाहिए कि उसके कारण कुछ

वास्तविक पूर्वाग्रह पैदा हुआ है, क्योंकि प्राकृतिक न्याय के केवल तकनीकी उल्लंघन जैसी कोई चीज नहीं है।

16. इस प्रकार, उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, हमारी सुविचारित राय है कि यदि जांच रिपोर्ट दोषी कर्मचारी को उपलब्ध नहीं कराई गई है तो यह अनुशासनात्मक कार्यवाही को वास्तव में प्रभावित नहीं करेगा क्योंकि यह तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। मामले में और दोषी कर्मचारी को यह स्थापित करना होगा कि जांच रिपोर्ट न देने के कारण उसके साथ वास्तविक पूर्वाग्रह उत्पन्न हुआ है।

17. *असम राज्य बनाम बिमल कुमार*, एआईआर 1963 एससी 1612 में इस न्यायालय ने इस मुद्दे पर विचार किया कि क्या सजा देते समय किसी कर्मचारी के पिछले आचरण को ध्यान में रखना स्वीकार्य है यदि दूसरे कारण बताओ नोटिस में इसका उल्लेख नहीं किया गया है। न्यायालय ने कहा कि दूसरा कारण नोटिस जारी करते समय, अनुशासनात्मक प्राधिकारी को स्वाभाविक रूप से आरोपित कर्मचारी के अपराध के साथ-साथ सजा के बारे में एक अस्थायी या अंतिम निष्कर्ष पर आना होगा जो उसके मामले में न्याय की आवश्यकता को पूरा करेगा, और यह इन दोनों मामलों में अंतिम रूप से निष्कर्ष पर पहुंचने के बाद ही अनुशासनात्मक प्राधिकारी दूसरा नोटिस जारी करता है। दोषी कर्मचारी न केवल उसके खिलाफ की जाने वाली प्रस्तावित कार्रवाई के खिलाफ बल्कि

जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए और अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा अंतिम रूप से स्वीकार किए गए निष्कर्षों की वैधता या शुद्धता के खिलाफ भी कारण बताने का हकदार है। इस प्रकार, यह अपराधी को पूरे मामले को कवर करने और यह दलील देने में सक्षम बनाता है कि उसके खिलाफ कोई अनुशासनात्मक कार्रवाई करने के लिए कोई मामला नहीं बनाया गया है और फिर यह आग्रह करने के लिए कि यदि वह अपनी बेगुनाही को साबित करने में विफल रहता है, तो उसके खिलाफ प्रस्तावित कार्रवाई या तो अनावश्यक रूप से गंभीर या अपेक्षित नहीं है।

18. *मैसूर राज्य बनाम मांचे गौड़ा,* एआईआर 1964 एससी 506 में, इस न्यायालय ने माना कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी को दोषी कर्मचारी को सूचित करना चाहिए कि सजा देते समय कर्मचारी के पिछले आचरण को ध्यान में रखना संभव है जब तक कि आरोप सिद्ध न हो जाए। अपराधी के विरुद्ध मामला इतना गंभीर है कि इसके लिए स्वतंत्र रूप से प्रस्तावित दंड की आवश्यकता हो सकती है। हालाँकि उनका पिछला रिकॉर्ड प्रथम दृष्टया आरोप का विषय नहीं हो सकता है।

19. *इंडिया मरीन सर्विस (पी) लिमिटेड बनाम देयर वर्कर्स,* (1963) 3 एससीआर 575 मामले में, इस न्यायालय ने इसी तरह के मुद्दे पर विचार करते हुए निम्नानुसार निर्णय लिया:

"यह सच है कि अंतिम वाक्य से पता चलता है कि बोस के पिछले रिकॉर्ड को भी ध्यान में रखा गया है। लेकिन इससे यह नहीं पता चलता है कि उन्हें बर्खास्त करने का यही प्रभावी कारण था। प्रबंध निदेशक इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि बोस की सेवाएं अनुशासन के हित में इसे समाप्त किया जाना चाहिए, उन्होंने पहले ही आ चुके निर्णय को अतिरिक्त महत्व देने के लिए एक वाक्य जोड़ा। इस दृष्टिकोण से, यह निष्कर्ष निकलेगा कि ट्रिब्यूनल प्रबंध निदेशक के निष्कर्ष के पीछे जाने और उसके सामने प्रस्तुत साक्ष्यों पर स्वयं विचार करने में सक्षम नहीं था। इसलिए, बोस की बर्खास्तगी को रद्द करने और उनकी बहाली का निर्देश देने वाले ट्रिब्यूनल के आदेश को कानून के विपरीत होने के कारण रद्द कर दिया जाता है।"

20. इसी प्रकार *महानिदेशक, आरपीएफ बनाम सी.एच. साई बाबू,* (2003) 4 एससीसी 331, में इस न्यायालय ने निम्नानुसार आयोजित किया:

"आम तौर पर, उचित मामलों को छोड़कर, किसी अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा दी गई सजा को उच्च न्यायालय या न्यायाधिकरण द्वारा परेशान नहीं किया जाना

चाहिए, वह भी केवल इस निष्कर्ष पर पहुंचने के बाद कि लगाई गई सजा घोर या आश्चर्यजनक रूप से अनुपातहीन है, जिसमें सभी प्रासंगिक कारकों की जांच करना शामिल है। साबित किए गए आरोपों की प्रकृति, पिछला आचरण, पहले लगाया गया जुर्माना, उनकी संवेदनशीलता को ध्यान में रखते हुए सौंपे गए कर्तव्यों की प्रकृति, अपेक्षित सटीकता और बनाए रखने के लिए आवश्यक अनुशासन, और वह विभाग/प्रतिष्ठान जिसमें संबंधित अपराधी व्यक्ति काम करता है।"

21. *भारत फोर्ज कंपनी लिमिटेड बनाम उत्तम मनोहर नकाते,* (2005) 2 एससीसी 489 में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार समान दृष्टिकोण दोहराया:

"मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और प्रतिवादी के पिछले आचरण के साथ-साथ घरेलू जांच कार्यवाही के दौरान उसके आचरण को ध्यान में रखते हुए, हम यह नहीं कह सकते हैं कि प्रतिवादी पर लगाई गई सजा की मात्रा उसके कदाचार के कृत्य के लिए पूरी तरह से असंगत थी या अन्यथा मनमाना।"

22. *ए.पी. सरकार और अन्य बनाम मोह. ताहिर अली* (2007) 8 एससीसी 656 में, इस न्यायालय ने इस तर्क को खारिज कर दिया कि जब तक पिछला आचरण आरोप-पत्र का हिस्सा नहीं है, तब तक सजा देते समय इस पर विचार नहीं किया जा सकता है कि "कोई कठोर और तेज़ नियम नहीं हो सकता है कि केवल क्योंकि आरोप पत्र में पहले के कदाचार का उल्लेख नहीं किया गया है, इसलिए दंड देने वाले प्राधिकारी द्वारा इस पर विचार नहीं किया जा सकता है। पहले के कदाचार पर विचार अक्सर केवल उक्त प्राधिकारी की राय को सुदृढ़ करने के लिए आवश्यक होता है।

23. वास्तव में इस मामले में यह तर्क दिया गया था कि यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी कर्मचारी के पिछले सेवा रिकॉर्ड पर विचार करना चाहता है, तो इसे आरोप-पत्र का हिस्सा होना चाहिए। हालांकि *के. मांचे गौड़ा* (सुप्रा) में, इस न्यायालय ने कहा कि इसे केवल सजा देने के उद्देश्य से दूसरे कारण बताओ नोटिस में दर्शाया जाना चाहिए। ऐसे में यह जरूरी नहीं है कि यह आरोपपत्र का हिस्सा हो.

24. *कलर-केम लिमिटेड बनाम एएल अलासपुरकर और अन्य,* एआईआर 1998 एससी 948 में, इस न्यायालय ने वैधानिक नियमों पर विचार किया, जो स्वयं यह प्रदान करते थे कि सजा देते समय क्या विचार

किया जा सकता है और इसने इस पर कर्मचारी का पिछला रिकॉर्ड पर भी विचार किया।

25. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट है कि यह वांछनीय है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा दोषी कर्मचारी को सूचित किया जा सकता है कि सजा देते समय उसके पिछले आचरण को ध्यान में रखा जाएगा। लेकिन गंभीर प्रकृति के कदाचार या अनुशासनहीनता के मामले में, वैधानिक नियमों के अभाव में भी, प्राधिकारी दंड देने के निर्णय में महत्व जोड़ने के लिए कर्मचारी के निर्विवाद पिछले आचरण/सेवा रिकॉर्ड पर विचार कर सकता है यदि तथ्य के मामले की इतनी आवश्यकता है।

26. यह स्थापित कानूनी तर्क है कि आदतन अनुपस्थिति का मतलब अनुशासन का घोर उल्लंघन है [बर्न एंड कंपनी लिमिटेड बनाम वामर्स, एआईआर 1959 एससी 529; और एल एंड टी कोमात्सु लिमिटेड बनाम एन. उदयकुमार, (2008) 1एससीसी 224)

27. उपरोक्त स्थापित कानूनी प्रस्तावों के आलोक में तत्काल मामले की जांच की जानी आवश्यक है। माना कि प्रतिवादी कर्मचारी ने छह साल की सेवा पूरी नहीं की है और ड्यूटी से अनुपस्थित रहने के कारण उसे तीन बार सजा दी जा चुकी है। चौथी बार जब वह बिना छुट्टी के 10 दिनों तक अनुपस्थित रहे, तो उनके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई।

28. उसे कारण बताओ नोटिस इस कारण से नहीं दिया जा सका कि वह फिर से लाइन छोड़कर चला गया और 50 दिनों के बाद वापस लौट आया। इसलिए अनुशासनात्मक कार्यवाही शीघ्रता से पूरी नहीं की जा सकी। प्रतिवादी ने कारण बताओ नोटिस का जवाब प्रस्तुत किया और रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री से पता चलता है कि जांच के लंबित रहने के दौरान वह 10 दिनों के लिए लाइन से बाहर चला गया। इस तरह के बार-बार किए गए कदाचार या अनुपस्थिति के लिए कोई स्पष्टीकरण दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है। न्यायालय/न्यायाधिकरण को यह अवश्य ध्यान में रखना चाहिए कि जहां तक अनुशासित बल का संबंध है, ऐसी अनुशासनहीनता असहनीय है। प्रतिवादी सीआईएसएफ में गार्ड था। प्रतिवादी-कर्मचारी द्वारा कभी भी किसी भी स्तर पर यह समझाने का प्रयास नहीं किया गया कि जांच रिपोर्ट प्रस्तुत न करने से उसके साथ क्या पूर्वाग्रह उत्पन्न हुआ है। न ही उन्होंने कभी यह कहा कि इस तरह के कदम से न्याय विफल हो गया है। इसके अलावा, प्रतिवादी कर्मचारी ने कभी भी किसी भी स्तर पर इस बात से इनकार नहीं किया कि उसे अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू होने से पहले तीन बार दंडित नहीं किया गया था और मौजूदा मामले में कारण बताओ नोटिस जारी होने के बाद भी दो बार लाइन छोड़कर चला गया था। प्रतिवादी-कर्मचारी द्वारा कोई स्पष्टीकरण प्रस्तुत नहीं किया जा सका कि किन परिस्थितियों में उसने

अवकाश हेतु प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करना भी उचित नहीं समझा। बल्कि, प्रतिवादी ने सोचा कि उसे अपनी इच्छानुसार लाइन छोड़ने का अधिकार है। यह अनुशासन के घोर उल्लंघन का मामला था। प्रतिवादी कर्मचारी द्वारा दायर अपील पर वैधानिक अपीलीय प्राधिकारी द्वारा ठोस कारण बताते हुए निर्णय लिया गया। मामले के तथ्यों में न्यायिक समीक्षा की अपनी शक्तियों के सीमित प्रयोग में न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता वाली विशेष विशेषताएं प्रस्तुत नहीं की गईं। ऐसी तथ्यात्मक स्थिति में, हमारा विचार है कि उच्च न्यायालय को ऐसी तकनीकीताओ पर अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित दंड आदेश में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था।

29. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, अपील सफल होती है और स्वीकार की जाती है। एफएमएटी संख्या 1370/1992 में उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच के दिनांक 31.1.2002 के आक्षेपित निर्णय व आदेश और 1987 के सिविल आदेश संख्या 3885 डब्ल्यू में पारित विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय व आदेश दिनांक 16.7.1991 को अपास्त किया गया है। वैधानिक प्राधिकारी द्वारा लगाए गए दंड के आदेश को इसके द्वारा बहाल किया जाता है। कोई लागत का आदेश पारित नहीं किया।

अपील स्वीकार।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल '**सुवास**' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी प्रेमलता सैनी (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।